सम्यग्ज्ञानचन्द्रिका पीठिका

सामान्य प्रकरण

लेखक :
आचार्यकल्प पण्डितप्रवर टोडरमल

भारतीय श्रुति-दर्शन केन्द्र
जयपुर

प्रकाशक :
पण्डित टोडरमल स्मारक
ए-४, बापूनगर, जयपुर - ३०२०१५

प्रथम संस्करण : २०००]

क्या भगवान सबकुछ जानते हैं ?

१. सर्वद्रव्यपर्यायेषु केवलस्य अर्थात् भगवान उमास्वामी कहते हैं कि सकल द्रव्य एवं उनमें से प्रत्येक द्रव्य की सकल पर्यायों को केवलज्ञान जानता है।

– तत्त्वार्थसूत्र, अध्याय १, सूत्र २६

२. यह लोकालोक स्वभाव से ही अनन्तानन्त है। उतने यदि अनंतानन्त विश्व (लोक) भी हों तो केवलज्ञान जान सकता है, ऐसा केवलज्ञान का माहात्म्य है।

– तत्त्वार्थराजवार्तिक, अध्याय १, सूत्र २६

३. जीवादि द्रव्यजातियों की समस्त विद्यमान व अविद्यमान पर्यायें तात्कालिक पर्यायों की भांति विशिष्टतापूर्वक ज्ञान में वर्तती हैं।

– प्रवचनसार, गाथा ३७

४. यदि अनुत्पन्न पर्याय व नष्ट पर्याय ज्ञान के प्रत्यक्ष नहीं हों तो, उस ज्ञान को दिव्य कौन कहेगा ?

– प्रवचनसार, गाथा ३९

५. ज्ञान जो कि अव्याघाती है, वह अपने विषय में किसी भी पर पदार्थ से बाधित या रुद्ध नहीं होता, वह त्रिकाल-विषयक सत्-असत् सभी पदार्थों को युगपत् जानता है।

– योगसार प्राभृत, अध्याय १, गाथा २६

६. भूत, भावी समस्त पदार्थ जिस रूप में अपने-अपने काल में वर्तते हैं; केवलज्ञान उन्हें भी उसी रूप में जानता है। अर्थात् अतीत-अनागत पदार्थ अपने-अपने काल में जिसप्रकार से वर्त्तमान होते हैं, उन्हें भी केवलज्ञान उनके तात्कालीन वर्त्तमानरूप की तरह जानता है। केवलज्ञान भूत को स्मृति के द्वारा और भविष्य को किसी निमित्त की सहायता से नहीं जानता, उसके सामने द्रव्यों की सब पर्यायें वर्तमान की तरह स्पष्ट खुली हुई होती हैं, तभी वह उनका युगपत् जानने वाला हो सकता है।

– योगसार प्राभृत, अध्याय १, गाथा २८

७. तीन लोकवर्ती व तीन कालवर्ती समस्त द्रव्य, गुण व पर्यायों को क्रमरहितपने से जानने में केवली का विशुद्ध ज्ञान समर्थ है।

– परमात्म प्रकाश, अध्याय २ गाथा १०१

(शेष कव्हर पृष्ठ ३ पर)

आचार्यकल्प पण्डितप्रवर टोडरमलजीकृत

सम्यग्ज्ञानचन्द्रिका

पीठिका

।। मंगलाचरण ।।

वंदौं ज्ञानानंदकर, नेमिचन्द गुणकंद ।
माधव वंदित विमलपद, पुण्यपयोनिधि नंद ।। १ ।।
दोष दहन गुन गहन घन, अरि करि हरि अरहंत ।
स्वानुभूति रमनी रमन, जगनायक जयवंत ।। २ ।।
सिद्ध सुद्ध साधित सहज, स्वरससुधारसधार ।
समयसार शिव सर्वगत, नमत होहु सुखकार ।। ३ ।।
जैनी वानी विविध विधि, वरनत विश्वप्रमान ।
स्यात्पद-मुद्रित अहित-हर, करहु सकल कल्यान ।। ४ ।।
मैं नमो नगन जैन जन, ज्ञान-ध्यान धन लीन ।
मैन मान बिन दान घन, एन हीन तन छीन ।। ५ ।।[१]
इहविधि मंगल करन तैं, सबविधि मंगल होत ।
होत उदंगल दूरि सब, तम ज्यौं भानु उदोत ।। ६ ।।

सामान्य प्रकरण

अथ मंगलाचरण करि श्रीमद् गोम्मटसार द्वितीय नाम पंचसंग्रह ग्रंथ, ताकी देशभाषामयी टीका करने का उद्यम करौ हौं। सो यहु ग्रंथसमुद्र तौ ऐसा है जो सातिशय वुद्धि-बल संयुक्त जीवनि करि भी जाका अवगाहन होना दुर्लभ है। अर मैं मंदवुद्धि अर्थ प्रकाशनेरूप याकी टीका करनी विचारौं हौं।

सो यहु विचार ऐसा भया जैसें कोऊ अपने मुख तैं जिनेंद्रदेव का सर्व गुण वर्णन किया चाहै, सो कैसें बनै ?

इहां कोऊ कहै – नाहीं बनै है तो उद्यम काहे कौं करौ हौ ?

ताकौं कहिये है – जैसें जिनेंद्रदेव के सर्व गुण कहने की सामर्थ्य नाहीं, तथापि भक्त पुरुष भक्ति के वश तैं अपनी वुद्धि अनुसार गुण वर्णन करै, तैसें इस ग्रंथ का संपूर्ण अर्थ प्रकाशने की सामर्थ्य नाहीं। तथापि अनुराग के वश तैं मैं अपनी वुद्धि अनुसार (गुण)[२] अर्थ प्रकाशोंगा।

१. यह चित्रालंकारयुक्त है।
२. गुण शब्द घ प्रति में मिला।

बहुरि कोऊ कहै कि – अनुराग है तो अपनी बुद्धि अनुसार ग्रंथाभ्यास करो, मंदबुद्धिनि कौं टीका करने का अधिकारी होना युक्त नाहीं ।

ताकौं कहिये है – जैसें किसी शिष्यशाला विषैं बहुत बालक पढ़ैं हैं । तिनिविषैं कोऊ बालक विशेष ज्ञान रहित है, तथापि अन्य बालकनि तैं अधिक पढ्या है, सो आपतैं थोरे पढ़ने वाले बालकनि कौं अपने समान ज्ञान होने के अर्थि किछू लिखि देना आदि कार्य का अधिकारी हो है । तैसें मेरे विशेष ज्ञान नाहीं, तथापि काल दोष तैं मोतैं भी मंदबुद्धि हैं, अर होंहिगे । तिनिकैं मेरे समान इस ग्रंथ का ज्ञान होने के अर्थि टीका करने का अधिकारी भया हौं ।

बहुरि कोऊ कहै कि – यहु कार्य करना तो विचारचा, परन्तु जैसें छोटा मनुष्य बड़ा कार्य करना विचारै, तहां उस कार्य विषैं चूक होई ही, तहां वह हास्य कौं पावै है । तैसें तुम भी मंदबुद्धि होय, इस ग्रंथ की टीका करनी विचारौ हौं सो चूक होइगी, तहां हास्य कौं पावोगे ।

ताकौं कहिये है – यहु तौ सत्य है कि मैं मंदबुद्धि होइ ऐसै महान ग्रंथ की टीका करनी विचारी हौं, सो चूक तौ होइ, परन्तु सज्जन हास्य नाहीं करैंगे । जैसें औरनि तैं अधिक पढ्या बालक कहीं भूलै तब बड़े ऐसा विचारै हैं कि बालक है, भूलै ही भूलै, परंतु और बालकनि तैं भला है, ऐसैं विचारि हास्य नाहीं करै हैं । तैसै मैं इहां कहीं भूलोंगा तहां सज्जन पुरुष ऐसा विचारैंगे कि मंदबुद्धि था, सौ भूलै ही भूलै, परंतु केतेइक अतिमंदबुद्धीनि तैं भला है, ऐसैं विचारि हास्य न करैंगे ।

सज्जन तो हास्य न करैंगे, परन्तु दुर्जन तौ हास्य करैंगे ?

ताकौं कहिये है कि – दुष्ट तौ ऐसै ही हैं, जिनके हृदय विषैं औरनि के निर्दोष भले गुण भी विपरीतरूप ही भासैं । सो उनका भय करि जामैं अपना हित होय ऐसे कार्य कौं कौन न करैगा ?

बहुरि कोऊ कहै कि – पूर्व ग्रंथ थे ही, तिनिका अभ्यास करने-करावने तैं ही हित हो है, मंदबुद्धिनि करि ग्रंथ की टीका करने की महंतता काहेकौं प्रगट कीजिये ?

ताकौं कहिये है कि – ग्रंथ अभ्यास करने तैं ग्रंथ की टीका रचना करने विषैं उपयोग विशेष लागै है, अर्थ भी विशेष प्रतिभासै है । बहुरि अन्य जीवनि कौं ग्रंथ अभ्यास करावने का संयोग होना दुर्लभ है । अर संयोग होइ तौ कोई ही जीव कै अभ्यास होइ । अर ग्रंथ की टीका बनै तौ परंपरा अनेक जीवनि कैं अर्थ का ज्ञान होइ । तातै अपना अर अन्य जीवनि का विशेष हित होने के अर्थि टीका करिये है, महंतता का तौ किछू प्रयोजन नाहीं ।

बहुरि कोऊ कहै कि इस कार्य विषैं विशेष हित हो है सो सत्य, परंतु मंदबुद्धि तैं कहीं भूलि करि अन्यथा अर्थ लिखिए, तहां महत् पाप उपजने तैं अहित भी तो होइ ?

ताकौं कहिए है – यथार्थ सर्व पदार्थनि का ज्ञाता तौ केवली भगवान हैं। औरनि कैं ज्ञानावरण का क्षयोपशम के अनुसारी ज्ञान है, तिनिकौं कोई अर्थ अन्यथा भी प्रतिभासै, परंतु जिनदेव का ऐसा उपदेश है – कुदेव, कुगुरु, कुशास्त्रनि के वचन की प्रतीति करि वा हठ करि वा क्रोध, मान, माया, लोभ करि वा हास्य, भयादिक करि जो अन्यथा श्रद्धान करै वा उपदेश देइ, सो महापापी है। अर विशेष ज्ञानवान गुरु के निमित्त बिना, वा अपने विशेष क्षयोपशम बिना कोई सूक्ष्म अर्थ अन्यथा प्रतिभासै अर यहु ऐसा जानै कि जिनदेव का उपदेश ऐसैं ही है, ऐसा जानि कोई सूक्ष्म अर्थ कौं अन्यथा श्रद्धै है वा उपदेश दे तौ याकौं महत् पाप न होइ । सोइ इस ग्रंथ विषैं भी आचार्य करि कहा है –

सम्माइट्ठी जीवो, उवइट्ठं पवयणं तु सद्दहदि ।

सद्दहदि असब्भावं, अजाणमाणो गुरुणियोगा ॥२७॥ जीवकांड ॥

बहुरि कोऊ कहै कि – तुम विशेष ज्ञानी तैं ग्रंथ का यथार्थ सर्व अर्थ का निर्णय करि टीका करने का प्रारंभ क्यों न कीया ?

ताकौं कहिये है – काल दोष तैं केवली, श्रुतकेवली का तौ इहां अभाव ही भया। बहुरि विशेष ज्ञानी भी विरले पाइए। जो कोई है तौ दूरि क्षेत्र विषैं हैं, तिनिका संयोग दुर्लभ । अर आयु, बुद्धि, बल, पराक्रम आदि तुच्छ रहि गए। तातैं जो बन्या सो अर्थ का निर्णय कीया, अवशेष जैसैं है तैसैं प्रमाण हैं।

बहुरि कोऊ कहै कि – तुम कही सो सत्य, परंतु इस ग्रंथ विषैं जो चूक होइगी, ताके शुद्ध होने का किछू उपाय भी है ?

ताकौं कहिये है – एक उपाय यहु कीजिए है – जो विशेष ज्ञानवान पुरुषनि का प्रत्यक्ष तौ संयोग नाहीं, तातैं परोक्ष ही तिनिस्यों ऐसी वीनती करौ हौं कि मैं मंद बुद्धि हौं, विशेषज्ञान रहित हौं, अविवेकी हौं, शब्द, न्याय, गणित, धार्मिक आदि ग्रंथनि का विशेष अभ्यास मेरे नाहीं है, तातैं शक्तिहीन हौं; तथापि धर्मानुराग के वश तैं टीका करने का विचार कीया, सो या विषैं जहां-जहां चूक होइ, अन्यथा अर्थ होइ, तहां-तहां मेरे ऊपरि क्षमा करि तिस अन्यथा अर्थ कौं दूरि करि यथार्थ अर्थ लिखना। ऐसैं विनती करि जो चूक होइगी, ताके शुद्ध होने का उपाय कीया है।

बहुरि कोऊ कहै कि तुम टीका करनी विचारी सो तौ भला कीया, परंतु ऐसे महान ग्रंथनि की टीका संस्कृत ही चाहिये । भाषा विषैं याकी गंभीरता भासै नाहीं।

ताकौं कहिये है – इस ग्रंथ की **जीवतत्त्वप्रदीपिका** नामा संस्कृत टीका तौ पूर्वै है ही । परन्तु तहां संस्कृत, गणित, आम्नाय आदि का ज्ञान रहित जे मंदवुद्धि हैं, तिनिका प्रवेश न हो है । वहुरि इहां काल दोष तैं बुद्धयादिक के तुच्छ होने करि संस्कृतादि ज्ञान रहित घने जीव हैं । तिनिके इस ग्रंथ के अर्थ का ज्ञान होने के अर्थि भाषा टीका करिए है । सो जे जीव संस्कृतादि विशेषज्ञान युक्त हैं, ते मूलग्रंथ वा संस्कृत टीका तैं अर्थ धारेंगे । वहुरि जे जीव संस्कृतादि विशेष ज्ञान रहित हैं, ते इस भाषा टीका तैं अर्थ धारौ । वहुरि जे जीव संस्कृतादि ज्ञान सहित हैं, परंतु गणित आम्नायादिक के ज्ञान के अभाव तैं मूलग्रंथ वा संस्कृत टीका विषैं प्रवेश न पावै हैं, ते इस भाषा टीका तैं अर्थ कौं धारि, मूल ग्रंथ वा संस्कृत टीका विषैं प्रवेश करहु । वहुरि जो भाषा टीका तैं मूल ग्रंथ वा संस्कृत टीका विषैं अधिक अर्थ होइ, ताके जानने का अन्य उपाय वनै सो करहु ।

इहां कोऊ कहै – संस्कृत ज्ञानवालों कैं भाषा अभ्यास विषैं अधिकार नाहीं ।

ताकौं कहिये है – संस्कृत ज्ञानवालों कौं भाषा वांचने तैं कोई दोष तो नाहीं उपजै है, अपना प्रयोजन जैसें सिद्ध होइ तैसें ही करना । पूर्वै अर्धमागधी आदि भाषामय महान ग्रंथ थे । वहुरि वुद्धि की मंदता जीवनि के भई, तब संस्कृतादि भाषामय ग्रंथ बने । अब विशेष वुद्धि की मंदता जीवनि कैं भई तातैं देश भाषामय ग्रंथ करने का विचार भया । वहुरि संस्कृतादिक का अर्थ भी अब भाषाद्वार करि जीवनि कौं समझाइये है । इहां भाषाद्वार करि ही अर्थ लिख्या तो किछू दोष नाहीं है ।

ऐसें विचारि श्रीमद् **गोम्मटसार** द्वितीयनामा **पंचसंग्रह** ग्रंथ की 'जीवतत्त्व प्रदीपिका' नामा संस्कृत टीका, ताकै अनुसारि **'सम्यग्ज्ञानचंद्रिका'** नामा यहु देशभाषामयी टीका करने का निश्चय किया है । सो श्री अरहंत देव वा जिनवाणी वा निर्ग्रंथ गुरुनि के प्रसाद तैं वा मूल ग्रंथकर्ता नेमिचद्र आदि आचार्यनि के प्रसाद तैं यहु कार्य सिद्ध होहु ।

अब इस शास्त्र के अभ्यास विषैं जीवनि कौं सन्मुख करिए है । हे भव्यजीव हौ ! तुम अपने हित कौं वांछौ हौ तौ तुमकौं जैसें बनै तैसें या शास्त्र का अभ्यास करना । जातैं आतमा का हित मोक्ष है । मोक्ष बिना अन्य जो है, सो परसंयोगजनित है, विनाशीक है, दुःखमय है । अर मोक्ष है सोई निज स्वभाव है, अविनाशी है, अनंत सुखमय है । तातैं मोक्ष पद पावने का उपाय तुमकौं करना । सो मोक्ष के उपाय सम्यग्दर्शन, सम्यग्ज्ञान, सम्यक्चारित्र हैं । सो इनकी प्राप्ति जीवादिक के स्वरूप जानने ही तैं हो है ।

सो कहिए है – जीवादि तत्त्वनि का श्रद्धान सम्यग्दर्शन है । सो बिना जानें श्रद्धान का होना आकाश का फूल समान है । पहिलैं जानैं तब पीछैं तैसैं ही प्रतीति करि श्रद्धान कौं प्राप्त हो है । तातैं जीवादिक का जानना श्रद्धान होने तैं पहिलैं जो होइ सोई तिनके श्रद्धान रूप सम्यग्दर्शन का कारण जानना । बहुरि श्रद्धान भए जो जीवादिक का जानना होइ, ताही का नाम सम्यग्ज्ञान है । बहुरि श्रद्धानपूर्वक जीवादि जानैं स्वयमेव उदासीन होइ, हेय कौं त्यागै, उपादेय कौं ग्रहै, तब सम्यक् चारित्र हो है । अज्ञानपूर्वक क्रियाकांड तैं सम्यक्चारित्र होइ नाहीं । ऐसैं जीवादिक कौं जानने ही तैं सम्यग्दर्शनादि मोक्ष के उपायनि की प्राप्ति निश्चय करनी । सो इस शास्त्र के अभ्यास तैं जीवादिक का जानना नीकैं हो है । जातैं संसार है सोई जीव अर कर्म का संबंध रूप है । बहुरि विशेष जानैं इनका संबंध का जो अभाव होइ सोई मोक्ष है । सो इस शास्त्र विषैं जीव अर कर्म का ही विशेष निरूपण है । अथवा जीवादिक षड् द्रव्य, सप्त तत्त्वादिकनि का भी या विषैं नीकैं निरूपण है । तातैं इस शास्त्र का अभ्यास अवश्य करना ।

अब इहां केइ जीव इस शास्त्र का अभ्यास विषैं अरुचि होने कौं कारण विपरीत विचार प्रकट करै हैं । तिनिकौं समझाइए है । तहां जीव प्रथमानुयोग वा चरणानुयोग वा द्रव्यानुयोग का केवल पक्ष करि इस करणानुयोगरूप शास्त्र विषैं अभ्यास कौं निषेधै हैं ।

तिनिविषैं प्रथमानुयोग का पक्षपाती कहै है कि – इदानीं जीवनि की बुद्धि मंद बहुत है, तिनिकैं ऐसै सूक्ष्म व्याख्यानरूप शास्त्र विषैं किछू समझना होइ नाहीं तातैं तीर्थंकरादिक की कथा का उपदेश दीजिए तौ नीकैं समझैं, अर समझि करि पाप तैं डरैं, धर्मानुरागरूप होइ, तातैं प्रथमानुयोग का उपदेश कार्यकारी है ।

ताकौं कहिये है – अब भी सर्व ही जीव तौ एक से न भए हैं । हीनाधिक बुद्धि देखिए है । तातैं जैसा जीव होइ, तैसा उपदेश देना । अथवा मंदबुद्धि भी सिखाए हुए अभ्यास तैं बुद्धिमान होते देखिए है । तातैं जे बुद्धिमान हैं, तिनिकौं तौ यहु ग्रंथ कार्यकारी है ही अर जे मंदबुद्धि हैं, ते विशेषबुद्धिनि तैं सामान्य-विशेष रूप गुणस्थानादिक का स्वरूप सीखि इस शास्त्र का अभ्यास विषैं प्रवर्तौ ।

इहां मंदबुद्धि कहै है कि – इस गोम्मटसार शास्त्र विषैं तौ गणित समस्या अनेक अपूर्व कथन करि बहुत कठिनता सुनिए है, हम कैसैं या विषैं प्रवेश पावैं ?

तिनकौं कहिये है – भय मति करौ, इस भाषा टीका विषैं गणित आदि का अर्थ सुगमरूप करि कह्या है , तातैं प्रवेश पावना कठिन रह्या नाहीं । बहुर या

शास्त्र विषैं कथन कहीं सामान्य है, कहीं विशेष है, कहीं सुगम है, कहीं कठिन है; तहां जो सर्व अभ्यास बनै तौ नीकै हीं है, अर जो न बनै तौ अपनी बुद्धि के अनुसार जैसा बनै तैसा ही अभ्यास करौ। अपने उपाय में आलस्य करना नाहीं।

बहुरि तैं कह्या – प्रथमानुयोग संबंधी कथादिक सुनैं पाप तैं डरै हैं, अर धर्मानुरागरूप हो हैं।

सो तहां तौ दोऊ कार्य शिथिलता लीए हो हैं। इहां पाप-पुण्य के कारणकार्यादिक विशेष जानने तैं ते दोऊ कार्य दृढ़ता लिए हो हैं। तातैं याका अभ्यास करना। ऐसैं प्रथमानुयोग के पक्षपाती कौं इस शास्त्र का अभ्यास विषैं सन्मुख कीया।

अब चरणानुयोग का पक्षपाती कहै है कि – इस शास्त्र विषैं कह्या जीव-कर्म का स्वरूप, सो जैसैं है तैसें है ही, तिनिकौं जानैं कहा सिद्धि हो है ? जो हिंसादिक का त्याग करि व्रत पालिए, वा उपवासादि तप करिए, वा अरहंतादिक की पूजा, नामस्मरण आदि भक्ति करिए, वा दान दीजिए, वा विषयादिक स्यों उदासीन हूजै इत्यादि शुभ कार्य करिए तो आत्महित होइ। तातैं इनका प्ररूपक चरणानुयोग का उपदेशादिक करना।

ताकौं कहिए है – हे स्थूलबुद्धि ! तैं व्रतादिक शुभ कार्य कहे, ते करने योग्य ही हैं। परंतु ते सर्व सम्यक्त्व विना असै है जैसैं अंक बिना बिंदी। अर जीवादिक का स्वरूप जानैं बिना सम्यक्त्व का होना ऐसा जैसे बांझ का पुत्र। तातैं जीवादिक जानने के अर्थि इस शास्त्र का अभ्यास अवश्य करना। बहुरि तैं जैसैं व्रतादिक शुभ कार्य कहे अर तिनितैं पुण्यबंध हो है। तैसैं जीवादिक का स्वरूप जाननेरूप ज्ञानाभ्यास है, सो प्रधान शुभ कार्य है। यातैं सातिशय पुण्य का बंध हो है। बहुरि तिन व्रतादिकनि विषैं भी ज्ञानाभ्यास कौं ही प्रधानता है, सो कहिए है–

(जो जीव प्रथम जीव समासादि जीवादिक के विशेष जानै, पीछै यथार्थ ज्ञान करि हिंसादिक कौं त्यागि व्रत धारै, सोई व्रती है। बहुरि जीवादिक के विशेष जानै बिना कथंचित् हिंसादिक का त्याग तैं आपकौं व्रती मानै, सो व्रती नाहीं। तातैं व्रत पालने विषैं ज्ञानाभ्यास ही प्रधान है।)

बहुरि तप दोय प्रकार है – एक बहिरंग, एक अंतरंग। तहां जाकरि शरीर का दमन होइ, सो बहिरंग तप है, अर जातैं मन का दमन होइ, सो अंतरंग तप है। इनि विषैं बहिरंग तप तैं अंतरंग तप उत्कृष्ट है। सो उपवासादिक तौ बहिरंग तप है। ज्ञानाभ्यास अंतरंग तप है। सिद्धांत विषैं भी छह प्रकार अंतरंग तपनि विषैं चौथा स्वाध्याय नाम तप कह्या है। तिसतैं

उत्कृष्ट व्युत्सर्ग अर ध्यान ही है । तातैं तप करने विषैं भी ज्ञानाभ्यास ही प्रधान है । बहुरि जीवादिक के विशेषरूप गुणस्थानादिकनि का स्वरूप जानैं ही अरहंतादिकनि का स्वरूप नीकैं पहिचानिए है, वा अपनी अवस्था पहिचानिए है । ऐसी पहिचानि भए जो तीव्र अंतरंग भक्ति प्रकट हो है, सोई बहुत कार्यकारी है । बहुरि जो कुलक्रमादिक तैं भक्ति हो है, सो किंचिन्मात्र ही फल की दाता है । तातैं भक्ति विषैं भी ज्ञानाभ्यास ही प्रधान है ।

बहुरि दान चार प्रकार है – तिनिविषैं आहारदान, औषधदान, अभयदान तौ तात्कालिक क्षुधा के दुःख कौं वा रोग के दुःख कौं, वा मरणादि भय के दुःख ही कौं दूर करै है । **अर ज्ञानदान है सो अनंत भव संतान संबंधी दुःख दूर करने कौं कारण है ।** तीर्थंकर, केवली, आचार्यादिकनि कैं भी ज्ञानदान की प्रवृत्ति है । तातैं ज्ञानदान उत्कृष्ट है, सो अपनैं ज्ञानाभ्यास होइ तो अपना भला करै, अर अन्य जीवनि कौं ज्ञानदान देवै । ज्ञानाभ्यास बिना ज्ञानदान देना कैसैं होइ ? तातैं दान विषैं भी ज्ञानाभ्यास ही प्रधान है ।

बहुरि जैसैं जन्म तैं ही केई पुरुष ठिगनि के घर गए – तहां तिन ठिगनि कौं अपने मानैं हैं । बहुरि कदाचित् कोऊ पुरुष किसी निमित्त स्यों अपने कुल का वा ठिगनि का यथार्थ ज्ञान होनैं तें ठिगनि स्यों अंतरंग विषैं उदासीन भया, तिनिकौं पर जानि संबंध छुड़ाया चाहै है । बाह्य जैसा निमित्त है तैसा प्रवर्तैं है । बहुरि कोऊ पुरुष तिन ठिगनि कौं अपना ही जानैं है अर किसी कारण तैं कोऊ ठिग स्यों अनुरागरूप प्रवर्तैं है । कोई ठिग स्यों लड़ि करि उदासीन भया आहारादिक का त्यागी होइ है ।

तैसैं अनादि तैं सर्व जीव संसार विषैं प्राप्त हैं, तहां कर्मनि कौं अपने मानैं हैं । बहुरि कोइ जीव किसी निमित्त स्यों जीव का अर कर्म का यथार्थ ज्ञान होनैं तैं कर्मनि स्यों उदासीन भया, तिनिकौं पर जानने लगा, तिनस्यों संबंध छुड़ाया चाहै है । बाह्य जैसैं निमित्त है तैसैं वर्त्तै है । ऐसैं जो ज्ञानाभ्यास तैं उदासीनता होइ सोई कार्यकारी है । बहुरि कोई जीव तिन कर्मनि कौं अपने जानैं है । अर किसी कारण तैं कोई शुभ कर्म स्यों अनुराग रूप प्रवर्तैं है । कोई अशुभ कर्म स्यों दुःख का कारण जानि उदासीन भया विषयादिक का त्यागी हो है । ऐसैं ज्ञान बिना जो उदासीनता होइ सो पुण्यफल की दाता है, मोक्ष कार्य कौं न साधै है । तातैं उदासीनता विषैं भी ज्ञानाभ्यास ही प्रधान है । याही प्रकार अन्य भी शुभ कार्यनि विषैं ज्ञानाभ्यास ही प्रधान जानना । देखो ! महामुनीनि कैं भी ध्यान-अध्ययन दोय ही कार्य मुख्य हैं । तातैं शास्त्र अध्ययन तैं जीव-कर्म का स्वरूप जानि स्वरूप का ध्यान करना ।

बहुरि इहां कोऊ तर्क करै कि – कोई जीव शास्त्र अध्ययन तौ बहुत करै है। अर विषयादिक का त्यागी न हो है, ताकैं शास्त्र अध्ययन कार्यकारी है कि नाहीं ? जो है तौ महंत पुरुष काहेकौं विषयादिक तजैं, अर नाहीं है तो ज्ञानाभ्यास का महिमा कहां रह्या ?

ताका समाधान – शास्त्राभ्यासी दोय प्रकार हैं, एक लोभार्थी, एक धर्मार्थी। तहां जो अंतरंग अनुराग बिना-ख्याति-पूजा-लाभादिक के अर्थि शास्त्राभ्यास करै, सो लोभार्थी है, सो विषयादिक का त्याग नाही करै है। अथवा ख्याति, पूजा, लाभादिक कै अर्थि विषयादिक का त्याग भी करै है, तौ भी ताका शास्त्राभ्यास कार्यकारी नाहीं।

बहुरि जो अंतरंग अनुराग तैं आतम हित के अर्थि शास्त्राभ्यास करै है, सो धर्मार्थी है। सो प्रथम तौ जैन शास्त्र ऐसे हैं जिनका धर्मार्थी होइ अभ्यास करै, सो विषयादिक का त्याग करै ही करै। ताकै तौ ज्ञानाभ्यास कार्यकारी है ही। बहुरि कदाचित् पूर्वकर्म का उदय की प्रवलता तैं न्यायरूप विषयादिक का त्याग न बनै है तौ भी ताकैं सम्यग्दर्शन, ज्ञान के होने तैं ज्ञानाभ्यास कार्यकारी हो है। जैसै असंयत गुणस्थान विषैं विषयादिक का त्याग बिना भी मोक्षमार्गपना संभवै है।

इहां प्रश्न – जो धर्मार्थी होइ जैन शास्त्र अभ्यासै, ताकै विषयादिक का त्याग न होइ सो यहु तौ बनै नाहीं। जातैं विषयादिक के सेवन परिणामनि तैं हो है, परिणाम स्वाधीन हैं।

तहाँ समाधान – परिणाम ही दोय प्रकार है। एक बुद्धिपूर्वक, एक अबुद्धिपूर्वक। तहां अपने अभिप्राय के अनुसारि होइ सो बुद्धिपूर्वक। अर दैव – निमित्त तैं अपने अभिप्राय तैं अन्यथा होइ सो अबुद्धिपूर्वक। जैसै सामायिक करतैं धर्मात्मा का अभिप्राय ऐसा है कि मैं मेरे परिणाम शुभरूप राखों। तहां जो शुभपरिणाम ही होइ सो तौ बुद्धिपूर्वक। अर कर्मोदय तैं स्वयमेव अशुभ परिणाम होइ, सो अबुद्धिपूर्वक जानने। तैसै धर्मार्थी होइ जो जैन शास्त्र अभ्यासै है ताको अभिप्राय तौ विषयादिक का त्याग रूप वीतराग भाव का ही होइ, तहां वीतराग भाव होइ, तौ बुद्धिपूर्वक है। अर चारित्रमोह के उदय तैं सराग भाव होइ तौ अबुद्धिपूर्वक है। तातैं बिना वश जे सरागभाव हो हैं, तिनकरि ताकैं विषयादिक की प्रवृत्ति देखिये है। जातैं बाह्य प्रवृत्ति को कारण परिणाम है।

इहां तर्क – जो ऐसैं है तो हम भी विषयादिक सेवेंगे अर कहेंगे – हमारे उदयाधीन कार्य हो है।

ताकौं कहिये है – रे मूर्ख ! किछू कहने तैं तौ होता नाहीं ! सिद्धि तौ अभिप्राय के अनुसारि है । तातैं जैन शास्त्र के अभ्यास तैं अपना अभिप्राय कौं सम्यक्‌रूप करना । अर अंतरंग विषैं विषयादिक सेवन का अभिप्राय होतैं तौ धर्मार्थी नाम पावै नाहीं ।

ऐसैं चरणानुयोग के पक्षपाती कौं इस शास्त्र का अभ्यास विषैं सन्मुख कीया ।

अब द्रव्यानुयोग का पक्षपाती कहै है कि – इस शास्त्र विषैं जीव के गुणस्थानादिक रूप विशेष अर कर्म के विशेष वर्णन किए, तिनकौं जानैं अनेक विकल्प तरंग उठैं, अर किछू सिद्धि नाहीं । तातैं अपने शुद्धस्वरूप कौं अनुभवना वा अपना अर पर का भेदविज्ञान करना – इतना ही कार्यकारी है । अथवा इनके उपदेशक जे अध्यात्मशास्त्र, तिनका ही अभ्यास करना योग्य है ।

ताकौं कहिये है – हे सूक्ष्माभासवुद्धि ! तैं कह्या सो सत्य, परंतु अपनी अवस्था देखनी ! जो स्वरूपानुभव विषैं वा भेदविज्ञान विषैं उपयोग निरंतर रहै, तौ काहेकौं अन्य विकल्प करने । तहां ही स्वरूपानंदसुधारस का स्वादी होइ संतुष्ट होना । परन्तु नीचली अवस्था विषैं तहां निरन्तर उपयोग रहै नाहीं । उपयोग अनेक अवलंबनि कौं चाहै है । तातैं जिस काल तहां उपयोग न लागै, तब गुणस्थानादि विशेष जानने का अभ्यास करना ।

बहुरि तैं कह्या कि – अध्यात्मशास्त्रनि का ही अभ्यास करना, सो युक्त ही है । परन्तु तहां भेदविज्ञान करने के अर्थि स्व-पर का सामान्यपनैं स्वरूप निरूपण है । अर विशेष ज्ञान विना सामान्य का जानना स्पष्ट होइ नाहीं । तातैं जीव के अर कर्म के विशेष नीकैं जानैं ही स्व-पर का जानना स्पष्ट हो है । तिस विशेष जानने कौं इस शास्त्र का अभ्यास करना । जातैं सामान्य शास्त्र तैं विशेष शास्त्र वलवान है । सो ही कह्या है– **"सामान्यशास्त्रतो नूनं विशेषो बलवान् भवेत् ।"**

इहां वह कहै है कि – अध्यात्मशास्त्रनि विषैं तौ गुणस्थानादि विशेषनिकरि रहित शुद्धस्वरूप का अनुभवना उपादेय कह्या है । इहां गुणस्थानादि सहित जीव का वर्णन है । तातैं अध्यात्मशास्त्र अर इस शास्त्र विषैं तौ विरुद्ध भासै है, सो कैसैं है ?

ताकौं कहिये है नय दोय प्रकार है – एक निश्चय, एक व्यवहार । तहां निश्चयनय करि जीव का स्वरूप गुणस्थानादि विशेष रहित अभेद वस्तु मात्र ही है । अर व्यवहारनय करि गुणस्थानादि विशेष संयुक्त अनेक प्रकार है । तहां जे जीव सर्वोत्कृष्ट, अभेद, एक स्वभाव कौं अनुभवै हैं; तिनकौं तौ तहां शुद्ध उपदेश रूप जो शुद्ध निश्चयनय सो ही कार्यकारी है ।

बहुरि जे स्वानुभव दशा कौं न प्राप्त भए, वा स्वानुभवदशा तैं छूटि सविकल्प दशा कौं प्राप्त भए ऐसे अनुत्कृष्ट जो अशुद्ध स्वभाव, तिहि विषैं तिष्ठते जीव, तिनकौं व्यवहारनय प्रयोजनवान है। सोई आत्मख्याति अध्यात्मशास्त्र विषैं कह्या है—

सुद्धो सुद्धादेसो, णादव्वो परमभावदरसीहिं।
ववहारदेसिदो पुण जे दु अपरमेट्ठिदा भावे ।।[१]

इस सूत्र की व्याख्या का अर्थ विचारि देखना।

बहुरि सुनि ! तेरे परिणाम स्वरूपानुभव दशा विषैं तौ प्रवर्तैं नाहीं। अर विकल्प जानि गुणस्थानादि भेदनि का विचार न करैगा तौ तू इतो भ्रष्ट ततो भ्रष्ट होय अशुभोपयोग ही (विषैं) प्रवर्त्तैगा, तहां तेरा बुरा होयगा।

(बहुरि सुनि ! सामान्यपनैं तौ वेदांत आदि शास्त्राभासनि विषैं भी जीव का स्वरूप शुद्ध कहैं हैं, तहां विशेष जानैं बिना यथार्थ-अयथार्थ का निश्चय कैसैं होय ? तातैं गुणस्थानादि विशेष जानैं जीव की शुद्ध, अशुद्ध, मिश्र अवस्था का ज्ञान होइ, तब निर्णय करि यथार्थ का अंगीकार करैं)। **बहुरि सुनि ! जीव का गुण ज्ञान है, सो विशेष जानैं आत्मगुण प्रकट होइ, अपना श्रद्धान भी दृढ़ होय। [जैसैं सम्यक्त्व है, सो केवलज्ञान भए परमावगाढ नाम पावै है।** तातैं विशेष जानना।])

बहुरि वह कहै है – तुम कह्या सो सत्य, परंतु करणानुयोग तैं विशेष जानैं भी द्रव्यलिंगी मुनि अध्यात्म श्रद्धान बिना संसारी ही रहै। अर अध्यात्म अनुसारि तिर्यंचादिक कैं स्तोक श्रद्धान तैं भी सम्यक्त्व हो है। वा तुषमाष भिन्न इतना ही श्रद्धान तैं शिवभूति मुनि मुक्त भया। तातैं हमारी तौ बुद्धि तैं विशेष विकल्पनि का साधन होता नाहीं। प्रयोजनमात्र अध्यात्म अभ्यास करेंगे।

याकौं कहिये है – जो द्रव्यलिंगी जैसैं करणानुयोग तैं विशेष जानै है, तैसैं अध्यात्मशास्त्रनि का भी ज्ञान वाकै होय, परंतु मिथ्यात्व के उदय तैं अयथार्थ साधन करै तौ शास्त्र कहा करै ? शास्त्रनि विषैं तौ परस्पर विरुद्ध है नाहीं। कैसैं ? सो कहिये है – करणानुयोगशास्त्रनि विषैं भी अर अध्यात्मशास्त्रनि विषैं भी रागादिक भाव आत्मा के कर्म निमित्त तैं उपजे कहे। द्रव्यलिंगी तिनका आप कर्त्ता हुवा प्रवर्तै है। बहुरि शरीराश्रित सर्व शुभाशुभ क्रिया पुद्गलमय कहीं। द्रव्यलिंगी अपनी जानि तिनविषैं त्यजन, ग्रहण बुद्धि करै है। बहुरि सर्व ही शुभाशुभ भाव, आस्रव बंध के कारण कहे। द्रव्यलिंगी शुभभावन को संवर, निर्जरा, मोक्ष का कारण मानै है। बहुरि

१. समयसार, गाथा १२

शुद्धभाव संवर, निर्जरा, मोक्ष का कारण कह्या, ताकौं द्रव्यलिंगी पहिचानै ही नाहीं। बहुरि शुद्धात्मस्वरूप मोक्ष कह्या, ताका द्रव्यलिंगी के यथार्थ ज्ञान नाहीं। ऐसैं अन्यथा साधन करै तौ शास्त्रनि का कहा दोष है ?

बहुरि तैं तिर्यंचादिक कैं सामान्य श्रद्धान तैं कार्यसिद्धि कही, सो उनकैं भी अपना क्षयोपशम अनुसारि विशेष का जानना हो है। अथवा पूर्व पर्यायनि विषैं विशेष का अभ्यास कीया था, तिस संस्कार के बल तैं हो है। बहुरि जैसैं काहूनै कहीं गड्या धन पाया, सो हम भी ऐसैं ही पावैंगे, ऐसा मानि सब ही कौं व्यापारादिक का त्यजन न करना। तैसैं काहूनैं स्तोक श्रद्धान तैं ही कार्य सिद्ध किया तो हम भी ऐसैं ही कार्य सिद्धि करैंगे – ऐसैं मानि सर्व ही कौं विशेष अभ्यास का त्यजन करना योग्य नाहीं, जातैं यहु राजमार्ग नाहीं। **राजमार्ग तौ यहु ही है – नानाप्रकार विशेष जानि तत्त्वनि का निर्णय भए ही कार्यसिद्धि हो है।**

बहुरि तैं कह्या, मेरी बुद्धि तैं विकल्पसाधन होता नाहीं, सो जेता बनैं तेता ही अभ्यास कर। बहुरि तू पापकार्य विषैं तौ प्रवीण, अर इस अभ्यास विषैं कहै मेरी बुद्धि नाहीं, सो यहु तौ पापी का लक्षण है।

ऐंसै द्रव्यानुयोग का पक्षपाती कौं इस शास्त्र का अभ्यास विषैं सन्मुख कीया।
अब अन्य विपरीत विचारवालों कौं समझाइए है।

तहां शब्द-शास्त्रादिक का पक्षपाती बोलै है कि – व्याकरण, न्याय, कोश, छंद, अलंकार, काव्यादिक ग्रंथनि का अभ्यास करिए तो अनेक ग्रंथनि का स्वयमेव ज्ञान होय वा पंडितपना प्रगट होय। अर इस शास्त्र के अभ्यास तैं तो एक याही का ज्ञान होय वा पंडितपना विशेष प्रकट न होय, तातैं शब्द-शास्त्रादिक का अभ्यास करना।

ताकौं कहिये है – जो तू लोक विषैं ही पंडित कहाया चाहै है तौ तू तिन ही का अभ्यास किया करि। अर जो अपना कार्य किया चाहै है तो ऐसे जैनग्रन्थनि का अभ्यास करना ही योग्य है। बहुरि जैनी तौ जीवादिक तत्त्वनि के निरूपक जे जैनग्रन्थ तिन ही का अभ्यास भए पंडित मानैंगे।

बहुरि वह कहै है कि – मैं जैनग्रंथनि का विशेष ज्ञान होने ही के अर्थि व्याकरणादिकनि का अभ्यास करौं हौं।

ताकौं कहिए है – ऐसैं है तो भलै ही है, परंतु इतना है जैसैं स्याना खितहर अपनी शक्ति अनुसारि हलादिक तैं थोड़ा बहुत खेत कौं संवारि समय विषैं बीज

बोवै तौ ताकौं फल की प्राप्ति होइ । वैसें तू भी जो अपनी शक्ति अनुसारि व्याकरणादिक का अभ्यास तैं थोरी बहुत बुद्धि कौं संवारि यावत् मनुष्य पर्याय वा इंद्रियनि की प्रबलता इत्यादिक वर्तै हैं, तावत् समय विषैं तत्त्वज्ञान कौं कारण जे शास्त्र, तिनिका अभ्यास करेगा तौ तुझकौं सम्यक्त्वादि की प्राप्ति होयगी ।

बहुरि जैसें अयाना खितहर हलादिक तैं खेत कौं संवारता संवारता ही समय कौं खोवै, तौ ताकौं फलप्राप्ति होने की नाहीं, वृथा ही खेदखिन्न भया । तैसें तू भी जो व्याकरणादिक तैं बुद्धि कौं संवारता संवारता ही समय खोवेगा तौ सम्यक्त्वादिक की प्राप्ति होने की नाहीं । वृथा ही खेदखिन्न भया । बहुरि इस काल विषैं आयु बुद्धि आदि स्तोक हैं, तातैं प्रयोजनमात्र अभ्यास करना, शास्त्रनि का तौ पार है नाहीं । बहुरि सुनि ! केई जीव व्याकरणादिक का ज्ञानबिना भी तत्त्वोपदेशरूप भाषा शास्त्रनि करि, वा उपदेश सुनने करि, वा सीखने करि तत्त्वज्ञानी होते देखिये हैं । अर केई जीव केवल व्याकरणादिक का ही अभ्यास विषैं जन्म गमावै हैं, अर तत्त्वज्ञानी न होते देखिये हैं ।

बहुरि सुनि ! व्याकरणादिक का अभ्यास करने तैं पुण्य न उपजै है । धर्मार्थी होइ तिनका अभ्यास करै तौ किंचित् पुण्य उपजै । बहुरि तत्त्वोपदेशक शास्त्रनि का अभ्यास तैं सातिशय महत् पुण्य उपजै है । तातैं भला यहु है – असे तत्त्वोपदेशक शास्त्रानि का अभ्यास करना । ऐसें शब्द शास्त्रादिक का पक्षपाती कौं सन्मुख किया ।

बहुरि अर्थ का पक्षपाती कहै है कि - इस शास्त्र का अभ्यास किए कहा है ? सर्व कार्य धन तैं बनै हैं, धन करि ही प्रभावना आदि धर्म निपजै हैं । धनवान के निकट अनेक पंडित आनि (आय) प्राप्त होइ । अन्य भी सर्वकार्यसिद्धि होइ । तातैं धन उपजावने का उद्यम करना ।

ताकौं कहिए है - रे पापी ! धन किछू अपना उपजाया तौ न हो है । भाग्य तैं हो है, सो ग्रंथाभ्यास आदि धर्म साधन तैं जो पुण्य निपजै, ताही का नाम भाग्य है । बहुरि धन होना है तौ शास्त्राभ्यास किए कैसें न होगा ? अर न होना है तौ शास्त्राभ्यास न किए कैसें होगा ? तातैं धन का होना, न होना तौ उदयाधीन है । शास्त्राभ्यास विषैं काहे कौं शिथिल हूजै । बहुरि सुनि ! धन है सो तौ विनाशीक है, भय संयुक्त है, पाप तैं निपजै है, नरकादिक का कारण है ।

अर यह शास्त्राभ्यासरूप ज्ञानधन है सो अविनाशी है, भय रहित है, धर्मरूप है, **स्वर्ग मोक्ष का कारण** है । सो महंत पुरुष तौ धनकादिक कौं छोड़ि शास्त्राभ्यास विषैं लगै हैं । तू पापी शास्त्राभ्यास कौं छुड़ाय धन उपजावने की बड़ाई करै है, सो तू अनंत संसारी है ।

बहुरि तैं कह्या - प्रभावना आदि धर्म भी धन ही तैं हो हैं । सो प्रभावना आदि धर्म हैं सो किंचित् सावद्य क्रिया संयुक्त हैं । तिसतैं समस्त सावद्य रहित शास्त्राभ्यास रूप धर्म है, सो प्रधान है । ऐसैं न होइ तौ गृहस्थ अवस्था विषैं प्रभावना आदि धर्म साधते थे, तिनि कौं छांड़ि संजमी होइ शास्त्राभ्यास विषैं काहे को लागै है ? बहुरि शास्त्राभ्यास तैं प्रभावनादिक भी विशेष हो है ।

बहुरि तैं कह्या - धनवान के निकट पंडित भी आनि प्राप्त होइ । सो लोभी पंडित होंइ, अर अविवेकी धनवान होइ तहां ऐसैं हो है । अर शास्त्राभ्यासवालौं की तौ इंद्रादिक सेवा करै हैं । इहां भी बड़े बड़े महंत पुरुष दास होते देखिए हैं । तातैं शास्त्राभ्यासवालौं तैं धनवान कौं महंत मति जानै ।

बहुरि तैं कह्या — धन तैं सर्व कार्यसिद्धि हो है । सो धन तैं तौ इस लोक संबंधी किछू विषयादिक कार्य ऐसा सिद्ध होइ, जातैं बहुत काल पर्यंत नरकादि दुःख सहने होइ । अर शास्त्राभ्यास तैं ऐसा कार्य सिद्ध हो है जातैं इहलोक विषैं अर परलोक विषैं अनेक सुखनि की परंपरा पाइए । तातैं धन उपजावने का विकल्प छोड़ि शास्त्राभ्यास करना । अर जो सर्वथा ऐसैं न बनै तौ संतोष लिए धन उपजावने का साधनकरि शास्त्राभ्यास विषैं तत्पर रहना । ऐसैं अर्थ उपजावने का पक्षपाती कौं सन्मुख किया ।

बहुरि कामभोगादिक का पक्षपाती बोलै है कि - शास्त्राभ्यास करने विषैं सुख नाहीं, बड़ाई नाहीं । तातैं जिन करि इहां ही सुख उपजै ऐसे जे स्त्रीसेवना, खाना, पहिरना, इत्यादि विषय, तिनका सेवन करिए । अथवा जिन करि यहां ही बड़ाई होइ ऐसे विवाहादिक कार्य करिए ।

ताकौं कहिए है — विषयजनित जो सुख है सो दुःख ही है । जातैं विषय सुख है, सो परनिमित्त तैं हो है । पहिले, पीछैं, तत्काल आकुलता लिए है, जाके नाश होने के अनेक कारण पाइए है । आगामी नरकादि दुर्गति कौं प्राप्त करणहारा है । ऐसा है तौ भी तेरा चाह्या मिलै नाहीं, पूर्व पुण्य तैं हो है, तातैं विषम है । जैसे खाजि करि पीड़ित पुरुष अपना अंग कौं कठोर वस्तु तैं खुजावै, तैंसे इंद्रियनि करि

पीड़ित जीव, तिनकी पीड़ा सही न जाय तब किंचिन्मात्र तिस पीडा के प्रतिकार से भासै – ऐसैं जे विषयसुख तिन विषैं झंपापात लेवै है, परमार्थरूप सुख है नाहीं ।

बहुरि **शास्त्राभ्यास करने तैं भया जो सम्यग्ज्ञान, ताकरि निपज्या जो आनन्द, सो सांचा सुख है । जातैं सो सुख स्वाधीन है, आकुलता रहित है, काहू करि नष्ट न हो है, मोक्ष का कारण है, विषम नाहीं ।** जैसैं खाजि न पीडैं, तब सहज ही सुखी होइ, तैसैं तहां इंद्रिय पीड़ने कौं समर्थ न होइ, तब सहज ही, सुख कौं प्राप्त हो है । तातैं विषय सुख छोड़ि शास्त्राभ्यास करना । (जो) सर्वथा न छूटे तौ जेता बनैं तेता छोड़ि, शास्त्राभ्यास विषैं तत्पर रहना ।

बहुरि तैं विवाहादिक कार्य विषैं बड़ाई होने की कही, सो केतेक दिन बड़ाई रहेगी ? जाकै अर्थि महापापारंभ करि नरकादि विषैं बहुतकाल दुःख भोगना होइगा । अथवा तुझ तैं भी तिन कार्यनि विषैं धन लगावनेवाले बहुत हैं, तातैं विशेष बड़ाई भी होने की नाहीं ।

बहुरि शास्त्राभ्यास तैं ऐसी बडाई हो है, जाकी सर्वजन महिमा करैं, इंद्रादिक भी प्रशंसा करैं अर परंपरा स्वर्ग मुक्ति का कारण है । तातैं विवाहादिक कार्यनि का विकल्प छोड़ि, शास्त्राभ्यास का उद्यम राखना । सर्वथा न छूटै तो बहुत विकल्प न करना । ऐसैं काम भोगादिक का पक्षपाती कौं शास्त्राभ्यास विषैं सन्मुख किया । या प्रकार अन्य जीव भी जे विपरीत विचार तैं इस ग्रंथ अभ्यास विषैं अरुचि प्रगट करैं, तिनकौं यथार्थ विचार तैं इस शास्त्र के अभ्यास विषैं सन्मुख होना योग्य है ।

इहां अन्यमती कहै है कि – तुम अपने ही शास्त्र अभ्यास करने कौं दृढ किया । हमारे मत विषैं नाना युक्ति आदि करि संयुक्त शास्त्र हैं, तिनका भी अभ्यास क्यों न कराइए ?

ताकौं कहिए है – तुमारे मत के शास्त्रनि विषैं आत्महित का उपदेश नाहीं । जातैं कहीं शृंगार का, कहीं युद्ध का, कहीं काम सेवनादि का, कहीं हिंसादि का कथन है । सो ए तौ बिना ही उपदेश सहज ही बनि रहे हैं । इनकौं तजैं हित होई, ते तहां उलटे पोषे हैं, तातैं तिनतैं हित कैसे होइ ?

तहां वह कहै है – ईश्वरनै असैं लीला करी है, ताकौं गावैं हैं, तिसतैं भला हो है ।

तहां कहिये है – जो ईश्वर कै सहज सुख न होगा, तब संसारीवत् लीला करि सुखी भया । जो (वह) सहज सुखी होता तौ काहेकौं विषयादि सेवन वा

युद्धादिक करता ? जातैं मंदबुद्धि हू बिना प्रयोजन किंचिन्मात्र भी कार्य न करै। तातैं जानिए है – वह ईश्वर हम सारिखा ही है, ताका जस गाएं कहा सिद्धि है ?

बहुरि वह कहै है कि – हमारे शास्त्रनि विषै वैराग्य, त्याग, अहिंसादिक का भी तौ उपदेश है।

तहां कहिए है – सो उपदेश पूर्वापर विरोध लिए है। कही विषय पोषे हैं, कहीं निषेधे हैं। कहीं वैराग्य दिखाय, पीछै हिंसादि का करना पोष्या है। तहां वातुलवचन-वत् प्रमाण कहा ?

बहुरि वह कहै है कि वेदांत आदि शास्त्रनि विषै तो तत्त्व ही का निरूपण है।

तहां कहिए है – सो निरूपण प्रमाण करि बाधित, अयथार्थ है। ताका निराकरण जैन के न्यायशास्त्रनि विषैं किया है, सो जानना। तातैं अन्यमत के शास्त्रनि का अभ्यास न करना।

ऐसै जीवनि कौं इस शास्त्र के अभ्यास विषै सन्मुख किया, तिनकौ कहिए है–

हे भव्य ! शास्त्राभ्यास के अनेक अंग हैं। शब्द का वा अर्थ का वांचना, या सीखना, सिखावना, उपदेश देना, विचारना, सुनना, प्रश्न करना, समाधान जानना, बार बार चरचा करना, इत्यादि अनेक अंग हैं। तहां जैसै बनै तैसै अभ्यास करना। जो सर्व शास्त्र का अभ्यास न बनै तौ इस शास्त्र विषैं सुगम वा दुर्गम अनेक अर्थनि का निरूपण है। तहां जिसका बनै तिसही का अभ्यास करना। परंतु अभ्यास विषै आलसी न होना।

देखो ! शास्त्राभ्यासकी महिमा, जाकौं होतैं परंपरा आत्मानुभव दशा कौं प्राप्त होइ – सो मोक्ष रूप फल निपजै है; सो तौ दूर ही तिष्ठौ। शास्त्राभ्यास तैं तत्काल ही इतने गुण हो हैं। १. क्रोधादि कषायनि की तौ मंदता हो है। २. पंचइंद्रियनि की विषयनि विषैं प्रवृत्ति रुकै है। ३. अति चंचल मन भी एकाग्र हो है। ४. हिंसादि पंच पाप न प्रवर्तै हैं। ५. स्तोक ज्ञान होतैं भी त्रिलोक के त्रिकाल संबंधी चराचर पदार्थनि का जानना हो है। ६. हेयोपादेय की पहिचान हो है। ७. आत्मज्ञान सन्मुख हो है (ज्ञान आत्मसन्मुख हो है)। ८. अधिक-अधिक ज्ञान होतैं आनंद निपजै है। ९. लोकविषैं महिमा, यश विशेष हो है।१०. सातिशय पुण्य का बंध हो है – इत्यादिक गुण शास्त्राभ्यास करतैं तत्काल ही प्रगट होई हैं।

तातैं शास्त्राभ्यास अवश्य करना। बहुरि हे भव्य ! शास्त्राभ्यास करने का समय पावना महादुर्लभ है। काहे तैं ? सो कहिए हैं—

एकेंद्रियादि असंज्ञी पर्यंत जीवनिकें तौ मन ही नाहीं। अर नारकी वेदना पीड़ित, तिर्यंच विवेक रहित, देव विषयासक्त, तातैं मनुष्यनि कैं अनेक सामग्री मिले शास्त्राभ्यास होइ। सो मनुष्य पर्याय का पावना ही द्रव्य, क्षेत्र, काल, भाव करि महादुर्लभ है।

तहां द्रव्य करि लोक विषैं मनुष्य जीव बहुत थोरे हैं, तुच्छ संख्यात मात्र ही हैं। अर अन्य जीवनि विषैं निगोदिया अनंत हैं, और जीव असंख्याते हैं।

बहुरि क्षेत्र करि मनुष्यनि का क्षेत्र बहुत स्तोक है, अढाई द्वीप मात्र ही है। अर अन्य जीवनि विषैं एकेंद्रिनि का सर्व लोक है, औरनिका केते इक राजू प्रमाण है। बहुरि काल करि मनुष्य पर्याय विषैं उत्कृष्ट रहने का काल स्तोक है, कर्मभूमि अपेक्षा पृथक्त्व कोटि पूर्व मात्र ही है। अर अन्य पर्यायनि विषैं उत्कृष्ट रहने का काल — एकेंद्रिय विषैं तो असंख्यात पुद्गल परिवर्तन मात्र, अर और विषैं संख्यातपल्य मात्र है।

बहुरि भाव करि तीव्र शुभाशुभपना करि रहित ऐसे मनुष्य पर्याय कौं कारण परिणाम होने अति दुर्लभ है। अन्य पर्याय कौं कारण अशुभरूप वा शुभरूप परिणाम होने सुलभ है। ऐसैं शास्त्राभ्यास का कारण जो पर्याप्त कर्मभूमिया मनुष्य पर्याय, ताका दुर्लभपना जानना।

तहां सुवास, उच्चकुल, पूर्णआयु, इंद्रियनि की सामर्थ्य, नीरोगपना, सुसंगति, धर्मरूप अभिप्राय, बुद्धि की प्रबलता इत्यादिक का पावना उत्तरोत्तर महादुर्लभ है। सो प्रत्यक्ष देखिए है। अर इतनी सामग्री मिले विना ग्रंथाभ्यास बनै नाहीं। सो तुम भाग्यकरि यहु अवसर पाया है। तातैं तुमकौ हठ करि भी तुमारे हित होने के अर्थि प्रेरै हैं। जैसैं बनै तैसैं इस शास्त्र का अभ्यास करो। बहुरि अन्य जीवनि कौ जैसैं बनै तैसैं शास्त्राभ्यास करावौ। बहुरि जे जीव शास्त्राभ्यास करते होंइ, तिनकी अनुमोदना करहु। बहुरि पुस्तक लिखावना, वा पढ़ने, पढ़ावनेवालों की स्थिरता करनी, इत्यादिक शास्त्राभ्यास कौं बाह्यकारण, तिनका साधन करना। जातैं इनकरि भी परंपरा कार्यसिद्धि हो है वा महत्पुण्य उपजै है।

ऐसैं इस शास्त्र का अभ्यासादि विषैं जीवनि कौ रुचिवान किया।

—❀—

(कव्हर पृष्ठ २ का शेष)

८. नष्ट हुए अतीत पदार्थों में और उत्पन्न न हुए अनागत पदार्थों में भी केवलज्ञान की प्रवृत्ति पाई जाती है।

– जयधवल, पुस्तक १, पृष्ठ १९ व २९

९. जो अतीत वर्त्तमान व भावी पर्यायों सहित सम्पूर्ण द्रव्य को प्रत्यक्ष जानता है, उसे केवलज्ञान कहते हैं।

– धवला, पुस्तक १, पृष्ठ ९६

१०. केवलज्ञान त्रिकाल के विषयभूत द्रव्यों की अनन्त पर्यायों को जानने वाला होने से तत्परिमाण हैं। अतः केवलज्ञानी त्रिकालवर्ती पर्यायों को प्रत्यक्ष जानते हैं।

– धवला, पुस्तक १, पृष्ठ ३८७

११. केवलज्ञान से न जाना गया हो, ऐसा कोई भी पदार्थ नहीं है।

– धवला, पुस्तक ७, पृष्ठ ८९

१२. समवशरण में जिसके प्रताप से अचेतन बावड़ी में भी जीव की भूत-भावी पर्यायें नजर आ जाती हैं तो भला वह स्वयं त्रिलोकीनाथ क्या शुद्ध चेतन (ज्ञायक स्वभावी) होता हुआ हमारी, आपकी व अन्य द्रव्यों की भावी पर्यायें न जाने, यह सम्भव है ? कदापि संभव नहीं।

– हरिवंश पुराण, समवशरण का वर्णन

१३. समवशरण में भगवान के देह के प्रभामण्डल में सात भव दिखते हैं।

– आदि पुराण, पृष्ठ ८९६–८९७

जब भगवान् का भामण्डल अथवा प्रभामण्डल, जो कि अचेतन है; वह जीवों के भूत भविष्य को स्पष्टतया बता देता है तो भगवान की त्रिकालज्ञता क्यों नहीं मानी जावे ? अवश्य ही भगवान भूत [नष्ट] व भविष्य [अनुत्पन्न] के साथ-साथ वर्त्तमान सर्व को जानते ही हैं।

इसप्रकार उपर्युक्त आगम प्रमाण भगवान की नष्ट [भूत] व अनुत्पन्न [भविष्य] अर्थ में भी गति [ज्ञान] को सिद्ध करते हैं।

जो ऐसा कहते हैं कि 'केवलज्ञान उत्पन्न होने पर भी सब त्रिकालवर्ती वस्तु-स्वरूप का ज्ञान नहीं होता'; ऐसा मानने वाले को भगवान् वीरसेन स्वामी 'जैन नहीं, कपिल है' ऐसा कहते हैं। अर्थात् ऐसी मान्यता वाला वीरसेन स्वामी के मतानुसार कपिल है; जैन नहीं।

– धवला, पुस्तक ६, पृष्ठ ४९०

(पं. जवाहरलालजी जैन, भीण्डर द्वारा संकलित "बृहज्जिनोपदेश" के आधार से)

हमारे यहा प्राप्त प्रकाशन

समयसार/वृहज्जिनवाणी संग्रह	२०–००
प्रवचनसार	१६–००
मोक्षशास्त्र/आधुनिक जैन कवि	२०–००
पण्डित टोडरमल : व्यक्तित्व और कर्तृत्व	११–००
नियमसार/पंचास्तिकायसंग्रह	१०–००
समयसारनाटक/भावदीपिका	१०–००
आचार्य कुन्दकुन्द और उनके टीकाकार	१०–००
प्रवचन रत्नाकर भाग १	१२–००
प्रवचन रत्नाकर भाग २, ३, ४, ५	१०–००
सिद्धचक्र विधान/मोक्षमार्ग प्रकाशक	१०–००
जिनेन्द्र अर्चना (पूजन संग्रह)/ ज्ञानगोष्ठी	७–००
तीर्थंकर महावीर और उनका सर्वोदय	
तीर्थ (हि. गु. म. क. अं.)	६–००
सत्य की खोज (कथानक) (हि. गु. म. त)	६–००
अध्यात्म संदेश	६–००
पुरुषार्थ सिद्धयुपाय/अध्यात्म रत्नत्रय	६–००
जिनवरस्य नयचक्रम	६–००
श्रावकधर्मप्रकाश	५–५०
क्रमबद्धपर्याय (हि. गु. म. क. त. अं.)	५–००
धर्म के दशलक्षण (हि. गु. म. क. त. अं.)	५–००
वारह भावना : एक अनुशीलन	५–००
चौवीस तीर्थंकर पूजन विधान/छहढाला	५–००
वनारसी विलास/अर्द्धकथानक	५–००
वावूभाई विशेपांक/वनारसीदास विशेपांक	५–००
वीतराग विज्ञान प्रशिक्षण निर्देशिका	५–००
भक्तामर प्रवचन	४–५०
गागर में सागर/आप कुछ भी कहो	४–००
वीतरागविज्ञान पाठमाला भाग १, २, ३	३–५०
वनारसीदास : व्यक्तित्व कर्तृत्व	३–००
वालबोध पाठमाला भाग १, २ व ३ (सम्पूर्ण सेट)	२–७०
तत्त्वज्ञान पाठमाला भाग १ और २	२–६५
चिद्विलास/चौंसठ ऋद्धि विधान	२–५०
युगपुरुप श्री कानजी स्वामी (हि., गु., म., क., त.)	२–००
परमार्थ वचनिका प्रवचन	२–००
विदेशों में जैनधर्म उभरते पदचिन्ह	२–००
जिन पूजन रहस्य	१–५०
मैं कौन हूं/अहिंसा महावीर की दृष्टि में	१–२५
भरत वाहुवली नाटक	१–२५
अद्वितीय चक्षु/चैतन्य चमत्कार/णमोलोए-सव्वसाहूणम्/वीर हिमाचल तैं निकसी	१–२५
वारह भावना पद्य/ लघु जैन सिद्धांत प्रवेशिका / वनारसीदास : जीवन और साहित्य / सार समयसार	१–००
जिनेन्द्र वंदना	०–७५
मैं ज्ञानानन्द स्वभावी हूं/महावीर वंदना (कलैण्डर)	०–५०
तीर्थंकर भगवान महावीर (हि., गु., म., क., असम तै., अं.)	०–५०
गोम्मटेश्वर वाहुवली/अर्चना (पूजन संग्रह)	०–४०
वीतरागी व्यक्तित्व : भगवान महावीर (हि., गु.)	०–२५

भारतीय श्रुत-दर्शन केन्द्र
जयपुर